International Journal of Information Movement Vol.I Issue IV (August 2016)
ISSN: 2456-0553 (online) Pages 11-20

लोक संस्कृति से अभिप्राय, स्वरूप, विशेषताएँ तथा विभिन्न पक्ष

डॉ. कुलदीप कौर
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
पंजाबी विश्वविद्यालय टी. पी. डी. मालवा कॉलेज,
रामपुरा फुल, बठिंडा, पंजाब
Email: kuldeep18674@gmail.com

लोक का अर्थ

'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोक दर्शन' धातु में 'धञ्' प्रत्यय लगाने पर निष्पन्न हुआ है। [1] इस धातु का अर्थ 'देखना' होता है। लट्लकार में इसके अन्य पुरूष एकवचन का रूप 'लोकते' है। इस प्रकार 'लोक' शब्द का अर्थ 'देखने वाला' हुआ । वह समस्त जनसमुदाय जो दृष्टि–निक्षेप रूप कार्य को सम्पन्न करता है 'लोक' कहा जाता है। 'लोक' शब्द से ही हिन्दी के 'लोग' शब्द की व्युत्पति मानी जाती है जिसका तात्पर्य है सर्वसाधारण जनता । अतः 'लोक' शब्द का अभिप्राय उस समस्त जनसमूह से है जो किसी देश में निवास करता है । परन्तु हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के कथनानुसार 'लोक' शब्द का अर्थ 'ग्राम्य' या 'जनपद' नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में रहने वाली सम्पूर्ण जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है । ये लोग नगरों में रहने वाले रूचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत लोगों की अपेक्षा सीधे–सादे तथा अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते है और परिष्कृत रूचि रखने वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं। [2]

वासुदेवशरण अग्रवाल लोक के विषय में कहते हैं – लोक हमारे जीवन का महा समुद्र है, जिसमें भूत–भविष्य–वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है । यह राष्ट्र का अमर स्वरूप है । कृतस्न ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यावसान है। अर्वाचीन में मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है । 'लोक' और लोक का धात्री, सर्वभूतरता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव यही हमारे नये जीवन का अध्यात्मशास्त्र है । इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार और निर्माण का नवीन रूप है । लोक, पृथ्वी और मानव इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणतम रूप है ।[3]

अंग्रेजी में 'लोक' का पर्याय 'Folk' शब्द माना जाता है । वास्तव में ' Folk ' शब्द आदिम जाति के उन सभी सदस्यों का बोधक है, जिनसे वह समुदाय निर्मित हुआ है । इसका साधारण अर्थ 'फोकलोर', 'फोक म्यूजिक' आदि में संकुचित होकर इसी अर्थ में आता है । किन्तु व्यापक अर्थ में इस शब्द से तात्पर्य सभ्य राष्ट्र की समस्त जनसंख्या को लिया जा सकता है । इस प्रकार लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो परंपरा में जीवित रहता है । [4] इस प्रकार हम 'लोक' से

जीवन का तात्पर्य ग्रहण करते हैं । यह जीवन परिस्थितियों के बीच देशकाल की सीमाओं के घेरे से उन्मुक्त मूल प्रकृति जीवन के साथ सम्बद्ध है। समय की धारा के साथ–साथ 'लोक' का अर्थ भी परिवर्तित होता रहा है।

'संस्कृति' का अर्थ

'संस्कृति' शब्द 'सम्' उपसर्ग–पूर्वक 'कृ' धातु से निष्पन्न होता है। यह परिष्कृत अथवा परिमार्जित करने के भाव का सूचक है । 'संस्कृति' शब्द मनुष्य की सहज प्रवृतियों, नैसर्गिक शक्तियों तथा उनके परिष्कार का द्योतक है यक व्यक्ति की मानसिक तथा बौद्धिक गतिविधियों, समाज के आचार–विचार, उन्नति–अवनति, रीति–रिवाज, धार्मिक, राजनैतिक एवं सामाजिक अवस्थाओं और पंरपराओं का परिचायक है।

[5]संस्कृति शब्द को हिन्दी मानक कोश में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है – शुद्धि, सफाई, संस्कार, परिष्कार, सजावट, रहन–सहन, पूर्ण करना आदि । [6]संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान तथा भावी जीवन का अपने में पूर्ण विकसित रूप है। इसमें विशेष जाति या देश के चिन्तन–मनन, आचार–विचार, रहन–सहन, वेश–भूषा, कला कौशल आदि सभी तत्वों को समावेश होता है ।

अंग्रेजी में 'संस्कृति' के लिए 'कल्चर' शब्द का प्रयोग किया जाता है । 'कल्चर' शब्द 'एग्रीकल्चर' अथवा 'हार्टीकल्चर' शब्द का एक अंश है । 'कल्चर' शब्द की सिद्धि लैटिन भाषा के 'कोलरे' धातु से हुई है । इस प्रकार आत्मिक शक्तियों का सर्वांगीण विकास करने वाली प्रक्रिया विशेष का नाम 'संस्कृति' है।

संस्कृति के शाब्दिक अर्थों को ग्रहण करने से ही संस्कृति के स्वरूप को नहीं समझा जा सकता । अतः स्पष्टीकरण के लिए यहाँ पर कुछ महान् समाज शास्त्रियों, विद्वानों के महत्वपूर्ण कथनों पर दृष्टिपात आवश्यक है ।

समाज शास्त्री एफ. जे. ब्राउन का कथन है, संस्कृति मानव के सम्पूर्ण. व्यवहार का एक ढाँचा है जो अंशतः भौतिक पर्यावरण से प्रभावित होता है यह पर्यावरण प्राकृतिक एवं मानव निर्मित दोनों प्रकार का हो सकता है, किन्तु प्रमुख रूप से यह ढाँचा सुनिश्चित विचारधाराओं, प्रवृतियों, मूल्यों तथा आदतों द्वारा प्रभावित होता है, जिसका विकास समूह द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जा सकता है। [7]

एडवर्ड बी.टायलर का मत है कि संस्कृति ज्ञान, विश्वास कला, नैतिकता, न्याय, रीतिरिवाज तथा अन्य क्षमताओं या आदतों जो मनुष्य द्वारा समाज का सदस्य होने के नाते अर्जित की जाती है, इन सबका एक सम्मिश्रण है । [8] इस परिभाषा में संस्कृति के प्रमुख तत्वों तथा उनके मिश्रित संबंधों का उल्लेख है ।

एम. मोनियर विलियम के संस्कृत इंगलिश कोष के अनुसार संस्कृत शब्द के अर्थ इस प्रकार दिए हैं – तैयार करना, तैयारी, परिष्कार, पूर्णता आदि। [9]

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी संस्कृति को नाना प्रकार की धार्मिक साधनाओं, कलात्मक प्रयत्नों और सेवा, भक्ति तथा योग मूलक अनुभूतियों के भीतर से मनुष्य उस महान् सत्य के व्यापक और परिपूर्ण रूप को क्रमशः प्राप्ति बताते हैं।[10]

रामधारी सिंह 'दिनकर' संस्कृति को जीवन का एक तरीका मानते हैं। उनके अनुसार यह तरीका जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं । [11]

इस प्रकार 'लोक संस्कृति' मनुष्य का ऐसा प्राकृतिक जीवन है जिसका सर्वांगीण संस्कार व सुधार हो चुका है तथा जिसे मानव जीवन के एक आवश्यक अंश के रूप में सभी स्वीकृत मानते हैं।

लोक संस्कृति का अर्थ

लोक संस्कृति का सामान्य अर्थ है – साधारण जनसमाज में प्रचलित वे सब बातें जो सि□ांततः संस्कृति के क्षेत्र से संबद्ध हों। [12]

विभिन्न कोशों में लोकसंस्कृति के विभिन्न अर्थ मिलते हैं। 'भाषा शब्द कोश' में इसका अर्थ जगत् के जीवधारियों द्वारा की गई शुद्धि सफाई, सुधार, परिष्कार लोकसंस्कृति कहलाती है। [13]

नालन्दा विशाल शब्द सागर में इसका अर्थ सब लोग या सर्वसाधारण जनता से संबंध रखने वाली वे सभी बातें जो उसके मन, रूचि, आचार–विचार, कला–कौशल और सभ्यता के क्षेत्र में बौद्धिक विकास की सूचक होती हैं । [14]

हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास में लोक संस्कृति का अर्थ जनजीवन से संबंधित जितने आचार–विचार, विधि–निषेध, विश्वास, प्रथा–परंपरा, धर्म तथा मूढ़ाग्रह, अनुष्ठान आदि सभी सम्मिलित हैं। [15]

हिन्दी विश्वकोश में कहा गया है कि उस सामान्य रूप को लोकसंस्कृति का धरातल कहा जा सकता है, जिसमें जनसाधारण की परंपराएँ, रीति–नीतियाँ, प्रथाएँ, लोक–विश्वास आदि समाविष्ट होंगे । [16]

लोकसंस्कृति की परिभाषा

लोकसंस्कृति को विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है । सत्या गुप्त लोकसंस्कृति की सामान्य परिभाषा देते हुए कहती है, हर देश तथा समाज की उत्कृष्ट संस्कृति की आधार शिला वहाँ का लोकसमाज होता है और
इसी लोकसमाज की संस्कृति 'लोक संस्कृति' कहलाती है । लेकिन यह पंक्तिपद्ध लेखा नहीं है, अपितु ये एक मानसिक धरोहर तथा विश्वास है जो लोकमानस को युगों से पीढ़ी–दर–पीढ़ी विरासत के रूप में मिलती रही है । [17]

सत्येन्द्र लोक संस्कृति की परिभाषा इस प्रकार देते हैं – लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है । इसी वर्ग से सम्बद्ध संस्कृति 'लोक संस्कृति' कही जाती है। [18]

विद्या चौहान ने लोक संस्कृति की परिभाषा इस प्रकार दी है – लोक संस्कृति का संबंध हमारे हृदय, मस्तिष्क, मन के संस्कारों में रहता है और इसका संबंध जन–समुदाय से है । जन–जन के मन एवं आचरण में सन्निहित तत्वों से संस्कृति का सुमन अपनी पंखुडियों का निर्माण करता है सम्पूर्ण लोक की सौन्दर्यानुभूति उसमें सौरभ का संचार करती है । [19]

करनैल सिंह थिंद का विचार है, मौखिक संस्कृति ही लोकसंस्कृति है। यह एक ऐसा सत्य है, जिसमें लोकसमूहों की विचार ढलते हैं.......... लोक संस्कृति, लोकजीवन की आत्मा है और इसी के द्वारा लोकजीवन के उन सारे सस्कारों को बोध होता है जिनके द्वारा लोक अपने सामूहिक अथा सामाजिक जीवन के आदर्शों का निर्णय करते हैं। [20]

बनजारा बेदी लोकसंस्कृति को परिभाषित करते हुए कहते हैं, लोक संस्कृति की हर मानसिक और भौतिक प्रक्रिया के वेग का मूल स्त्रोत सामूहिक चित होता है । लोक मन एक ऐसा दीया है जो आदि–जुगादि से अब तक प्रत्येक मन में प्रज्ज्वलित चला रहा है। यह धुँधला तो हो जाता है पर किसी मन से जाता नहीं । वैज्ञानिक मन में लोकमन किसी न किसी कोने में जरूर छिपा होता है, लेकिन लोकमन का पूरा यौवन तो लोकसंस्कृति में ही देखा जा सकता है । लोक मन के अंकुर ही लोकसंस्कृति में बड़े वृक्ष की भाँति फैलते हैं और परंपरा के पानी से फैलते हैं। [21]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि लोकसंस्कृति लोकसमाज के समूचे जीवन ढंग का प्रगटीकरण होती है । यह जीवन ढंग अपने वस्तु और रूप के पक्ष से शहरी

संस्कृति से भिन्न भांति का होता है । लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि लोक व शहरी संस्कृति के बीच कोई संबंध नहीं हैं । वास्तव में यह तो आदिम मन की मनौवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है, वह चाहे दर्शन के क्षेत्र में हुई हो अथवा धर्म, विज्ञान व औषधि के क्षेत्र में ।

लोक संस्कृति का स्वरूप तथा विशेषताएँ

मानव के हृदय मास्तिक तथा मन के संस्कारों से संबंधित लोकसंस्कृति का संबंध जाति और समाज से विशेष रूप से रहता है । इसका स्वरूप हमारे इस कथन की ही पुष्टि करता है ।

लोकसंस्कृति का स्वरूप

लोकसंस्कृति और समाज का घनिष्ठ संबंध है । यह तो संभव है कि संस्कृति किसी व्यक्ति विशेष से अपना संबंध न रखे, किन्तु यह असंभव है कि वह किसी जाति या समाज विशेष से अपना संबंध ही विच्छेद कर ले ।

लोकसंस्कृति का विकास सामूहित प्रयत्नों से ही होता है । लोक और लोकसंस्कृति दोनों ही एक–दूसरे के पूरक हैं और पूर्ति भी । इस प्रकार आगे आने वाली संस्कृति इसके विकास में निरन्तर प्रयत्नशील रहती है ।

लोकसंस्कृति के इस दीर्घकालीन साधन की पीठिका में एक परंपरा अवश्य रहती है, जिसका संबंध किसी देश–विशेष से अवश्य रहता है । हर जाति के अपने विलक्षण चरित्र, जीवन–पैट्रन, संकल्प और धारणाएँ होती हैं जो सदियों की लम्बी यात्रा में रूढ़ हो जाती हैं और पीढ़ी–दर–पीढ़ी आगे चलती रहती हैं। यह लोक–संस्कृति जो परंपरा से शक्ति लेकर युगों की यात्रा करती है । अनेक रूढ़ियों और पैट्रन तो आदिकाल से ही निरंतर चले आ रहे हैं। हर जाति विरासत में मिले पैट□को या तो वैसे ही ग्रहण कर लेती है या उसका परिष्कार करके । बहुत कम पैट्रन ऐसे हैं जो वह माया रचकर अपनाती हो । लोकसंस्कृति परंपरागत पैट□ का ही संजोग है ।[22]

लोकसंस्कृति की महत्वपूर्ण स्वरूपगत विशेषता है – विगत का प्रभाव । यही विशेषता समाजगत ईकाई की द्योतक है। लोकगाथाओं, संगीत तथ अन्य कलाओं की ओर यदि हम ध्यान दें तो वे सभी लोकमानस की कहानी कहते हुए प्रतीत होते हैं और इसका प्रमुख आधार यह विगत ही है, जिसकी वाणीगत अभिव्यक्ति आज साहित्य एवं कलाओं में बिखरी पड़ी है ।

लोक–संस्कृति में गति तो होती है परन्तु प्रगति नहीं । प्रगति तो तभी आयेगी जब कोई परंपरा से अलग होकर रहेगा । उदाहरणतया – रोशनी के लिए दीपक को जलाना लोकसंस्कृति की रूढ़ि है । प्रगति के रूप में दीपक की जगह बिजली ने ले ली है । परंपरागत दीपक से मुक्त होकर बिजली की रोशनी का प्रयोग संस्कृति की ओर यात्रा है, लेकिन बिजली के प्रकाश के होने पर भी अपने इष्टदेव की मूर्ति के समक्ष दीया जलाना और रोशनी करना लोकसंस्कृति है ।

लोकसंस्कृति मौखिक अभिव्यक्ति है । यह एक ऐसा सत्य है जिनमें लोकसमूहों के विचार ढलते हैं.......... लोकसंस्कृति लोकजीवन की आत्मा है और इसी के कारण उन सारे संस्कारों का बोध होता है, जिनके द्वारा लोक अपने सामूहिक अथवा सामाजिक जीवन के आदर्शों का निर्णय करते हैं । [23] इनकी वास्तविकता ही मौखिक होने पर है । यदि इन्हें लिपिबद्ध किया जाता है तो इसका अर्थ यह है कि हमने इसकी हत्या करने में सहायता पहुँचाई है। [24]

लोकसंस्कृति विनोद और आनन्द की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होती है, जबकि सभ्यता की यात्रा प्रगति की ओर होती है । विनोद और आन्नद लोकसंस्कृति स्वरूपगत चरित्र की विशेषता है ।

लोकसंस्कृति में श्रद्धा भक्ति की प्राथमिकता रहती है । उसमें आश्वासन, तर्क आदि का कोई स्थान नहीं होता । लोक भाषा के माध्यम से सामान्य लोक जीवन में प्रचलित विश्वास, आस्था, परंपरा पर आधारित विषय लोकसंस्कृति के अन्तर्गत आते हैं। यह लोकसंस्कृति लोकमानस में परिव्याप्त होकर आनन्द लहरों में निमग्न होकर सुन्दर सत्य का उद्घाटन करती है । लोक–संस्कृति में श्रद्धा–भावना की परंपरा शाश्वत है । वह अन्तः सलिला सरस्वती की भांति जनजीवन में सतत् प्रवाहित हुआ करती है । [25]

लोकसंस्कृति की बहुत सी रूढ़ियाँ मानवीय आचार–व्यवहार, कथनी–करनी से संबंधित होने के कारण या तो प्रवृतात्मक होती हैं या निषेधात्मक । आगे चलकर इनकी भावाभिव्यक्ति रीति ख्पजनंस, और निषेध ख्ज्इववे, के रूप में उभरती है । जैसे – फूँक मारकर दीया न बुझाना, अंधेरे में वृक्ष को न छूना आदि निषेधात्मक प्रवृतियों के रूप में उभरते हैं। इस प्रकार की रूढ़ियों में लोकमन की कोई न कोई अभिव्यक्ति किसी न किसी रूप में निहित रहती है ।

अतः हम कह सकते हैं कि लोक–संस्कृति विकासशील लोक–संस्कार पर आश्रित है और यह रूढ़ि का पर्याय नहीं है । यह व्यक्तिगत संस्कार से किंचित भिन्न है, जो व्यक्ति की भांति जन्म लेकर

मरता नहीं, अपितु विकसित होता रहता है । वह गतिशील, वृद्धिशील और प्रसार प्रवण है, आनन्द उसका स्त्रोत है और मंगल भावना प्राण । लेकिन वह आनन्द व्यक्ति मानस का न होकर लोकमानव का होता है। यह संस्कृति लोक मानस की होती है और ये आधुनिक समाज से उल्टे प्रकार का समाज है और विशेषताए ही यही है कि इसके परंपरागत पैट्रन और रूढ़ियों की रचना लोक अथवा लोक–समाज ने ही की है । [26]

लोकसंस्कृति की विशेषताएँ

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हमें लोकसंस्कृति में निम्नलिखित विशेषताएँ दिखलाई पड़ती हैं –

1. लोकसंस्कृति मनुष्य द्वारा अर्जित होती है ।
2. लोकसंस्कृति अगतिशील होती है ।
3. यह एक धरोहर है जो आदिकाल से आज तक चलती आ रही है ।
4. मनुष्य तथा समाज के बीच यह स्थायी रूप से विद्यमान रहती है ।
5. यह लिपिद्ध नहीं होती है ।
6. लोकसंस्कृति अपरिवर्तनशील होती है ।

लोक–संस्कृति के विविध क्षेत्र लोकसंस्कृति अन्तर की तथा बाह्य जीवन की अभिव्यक्ति है । इसमें जीवन के सभी भौतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक मूल्य आ जाते है । लोक की मानसिक सम्पन्नता के अन्तर्गत जो भी चीजें हैं, वो सभी लोकसंस्कृति के विभिन्न क्षेत्र ही हैं।

विभिन्न विद्वानों ने लोकसंस्कृति के विविध क्षेत्रों का उल्लेख किया है – प्रेमदत शर्मा के अनुसार लोकसंस्कृति के विभिन्न क्षेत्र सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक, साहित्यिक एवं कला आदि हैं। [27]

बनजारा बेदी के अनुसार लोक–संस्कृति कुछ रूढ़ियों, तत्वों और जीवन पैट्रनों का सम्मिश्रण है लेकिन इसके पीछे ज्यादातर लोकमन की कोइ न कोई प्रवृति किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है । अतः लोकरूढ़ियाँ लोकमन से कैसे एक सुर होती हैं, इसकी व्याख्या स्वरूप ही हम जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के साथ संबंध जोड़ने का प्रयत्न करते हैं, जो लोक –संस्कृति के आयाम ही हैं –

1. संकेतात्मक रूढ़ियाँ
2. आनुष्ठानिक रूढ़ियाँ

3. धर्मपरक रूढ़ियाँ1

सोफिया बर्न ने लोकसंस्कृति के तीन क्षेत्र प्रस्तुत किये हैं–

1. लोकविश्वास और अंध–परंपराएँ,
2. रीति–रिवाज और अंध–प्रथाएँ,
3. लोक साहित्य । [28]

सत्या गुप्त लोकसंस्कृति को इतिहास के पथ में मील पत्थर की भाँति मानते हैं जिस पर भारत की धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक प्रगतियाँ अपना चिह्न छोड़ती जाती हैं। [29]

(अ) लोकधर्म

1. मनुष्य संबंधी
2. तिथि वार और मास संबंधी लोकविश्वास
3. प्रकृति संबंधी
4. पशु–पक्षी संबंधी लोक–विश्वास
5. स्वास्थ्य संबंधी
    1. दाँत कीलना
    2. कमहड़ा
    3. शीतला के सन्दर्भ में
6. मिश्रित लोक–विश्वास
7. पौराणिक लोक–विश्वास

(आ) मंत्र व टोने–टोटके

1. मसान
2. नज़र उतारने का मंत्र
3. जहरीले जानवरों के काटने पर

(इ) लोक कला

1. आनुष्ठानिक
2. समाजोपयोगी
3. व्यक्तिनिष्ठ

(ई) लोक–नृत्य

1. सामाजिक
2. धार्मिक
3. व्यावसायिक

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय के मत के अनुसार लोक–संस्कृति को निम्नांकित पाँच वर्गों में विभाजित किया गया है1 –

1. लोक विश्वास तथा अन्ध परंपरायें,
2. संस्कार, आचार–विचार तथा विधि–विधान,
3. सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक संस्थायें,
4. धार्मिक तथा आध्यात्मिक मान्यतायें,
5. लोक साहित्य

पुस्तक सूची:

1. सिद्धान्त कौमुदी, पृ. 417, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई.
2. द्विवेदी हज़ारी प्रसाद, जनपद (त्रैमासिक पत्रिका) वर्ष–1, अंक–1 (काशी : हिन्दू विश्वविद्यालय, अक्टूबर, 1952). पृ. 65.
3. अग्रवाल वासुदेव शरण, लोक का प्रत्यक्ष–दर्शन, सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक (प्रयाग: हिन्दी साहित्य सम्मेलन, सन् 1974). पृ. 67.
4. हिन्दी साहित्य कोश, भाग–1, सं. धीरेन्द्र वर्मा (वाराणसी : ज्ञानमण्डल लिमिटेड, दूसरा संस्करण), पृ. 689
5. वत्स महावीर, साठोतरी कविता में सांस्कृतिक चेतना (दिल्ली : संजय प्रकाशन, 1996), पृ. 2.
6. वर्मा रामचन्द्र, हिन्दी मानक कोश, पृ. 801, 802.
7. ब्राउन एफ.जे. एजुकेशन सोशियालोजी (न्यूयार्क : प्रेन्टिस हॉल, 1949), पृ. 63
8. टायलर एडर्वड बी, प्रिमिटिव कल्चर (लंदन : जे मयूर, 1929), पृ. 1.
9. मोनियर विलियम एम.ए. संस्कृत–इंगलिश डिक्शनरी (आक्सफोर्ड : 1951), पृ. 1120.
10. द्विवेदी हज़ारी प्रसाद, अशोक के फूल (इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 1976), पृ. 75
11. हिन्दू संस्कृति अंक, कल्याण, पृ. 70.
12. 'दिनकर' रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय (दिल्ली : राजपाल एण्ड सन्स, 1956), पृ. 653.
13. मानक हिन्दी कोश (चौथा खण्ड), सं. रामचन्द्र वर्मा (प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1965). पृ. 59
14. भाषा शब्द कोश (संपा) रामशंकर रसाल (इलाहाबाद : रामनरायण लाल बेनी प्रसाद, 1974), पृ. 1477.
15. नालंदरा विशाल शब्दसागर, संपा, नवल जी (देहली : फूलचन्द जैन, 1950), पृ. 1221, 1388.

16. हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, षोडस भाग, संपा, राहुल सांकृत्यायन, कृष्णदेव उपाध्याय (काशी : नागरी प्रचारिणी सभा, सं. 2017), पृ. 11.
17. हिन्दी विश्व कोश, खंड–10, संपा. रामप्रसाद त्रिपाठी (वाराणसी : नागरी प्रचारिणी सभा, 1968). पृ. 348.
18. गुप्त सत्या, खड़ी बोली का लोक साहित्य (इलाहाबाद : हिन्दुस्तानी एकेडेमी, 1965), पृ. 331.
19. सत्येन्द्र, मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्विक अध्ययन (आगरा : विनोद पुस्तक मंदिर, प्रथम संस्करएा), पृ. 3.
20. चौहान विद्या, लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमिः भोजपुरी और अवधी के संदर्भों में (आगरा : प्रगति प्रकाशन, 1972) प्रस्तावना, पृ.ख.
21. थिंद करनैल सिंह, 'लोकयान अते लोकसंस्कृति', 'लोकयान अते मध्यकालीन पंजाबी साहित' (अमृतसर : जीवन मंदिर प्रकाशन 1973) पृ. 24
22. बेदी बनजारा, 'लोकधारा अते साहित', 'लोक परम्परा अते साहित' (संपा.) बनजारा बेदी तथा जतिंदर बेदी (नई दिल्लीः परंपरा प्रकाशन, 1978). पृ. 3.
23. बेदी बनजारा, लोकधारा अते साहित', 'लोक परंपरा अते साहित' (संपा.) बनजारा बेदी, जतिंदर बेदी (नई दिल्ली : परंपरा प्रकाशन, 1978). पृ. 78.
24. थिंद करनैल सिंह, 'लोकयान अते लोकसंस्कृति', लोकयान अते मध्यकालीन पंजाबी साहित (अमृतसर : जीवन मंदिर प्रकाशन, 1973), पृ.24.
25. हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, षोडस भाग (संपा), राहुल सांकृत्यायन, कृष्णदेव उपाध्याय (वाराणसी : काशी नागरी प्रचारणी सभा, वि.सं. 2017), पृ. 95.
26. भारतीय संस्कृति में लोकजीवन ही अभिव्यक्ति, सम्मेलन पत्रिका (संपा), श्री रामनाथ सुमन (प्रयाग : सम्मेलन मुद्रणालय, 1973), पृ. 20.
27. बेदी बनजारा, 'लोक अते लोक संस्कृति', 'लोक संस्कृति अते साहित' (नई दिल्ली : परम्पा प्रकाशन, 1973), पृ. 177–178.
28. शर्मा प्रेमदत, प्रसाद साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि (जयपुर : पुस्तक सदन, 1968), पृ. 4
29. गुप्त सत्या, खड़ी बोली का लोकसाहित्य (इलाहाबादः हिन्दुस्तानी एकेडमी 1965), पृ. 331